IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कुली–बेगार : आत्म स्वातंत्र्य का दमन

डॉ0 शरद भट्ट,
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामनगर, नैनीताल

प्रसिद्ध लेखक चार्ल्स डिकेंस के उपन्यास 'ग्रेट एक्सपेटेशन्स' में बच्चों की छोटी सी दुनिया का सजीव चित्रण है। इसमें एक पात्र 'पिप' कहता है कि 'अन्याय का एहसास बहुत अंदर तक होता है।[1] मैं समझता हूँ कि पिप ने जो कहा ठीक कहा। उसने बचपन में अपनी तुनकमिजाज व गुस्सैल बहन के हाथों बहुत अपमान सहा था। ऐसा ही अहसास अन्याय होने पर हर किसी को होता है और यह बात व्यापक पटल पर, चाहे अतीत में हो या वर्तमान में, हमारे संसार में जहाँ–तहाँ घर कर रहे अन्याय पर भी लागू होती है। 'निश्चित रूप से यह माना जा सकता है कि यदि परिहार्य अन्याय ने इन्हें उद्वेलित नहीं कर दिया होता तो पेरिसवासी कभी शाही कारागार पर आक्रमण नहीं करते, ना ही गाँधी जी इस साम्राज्य को चुनौती देते जिसमें कभी सूर्यास्त नहीं होता। ये सभी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहे अन्याय का यथासम्भव निराकरण अवश्य करना चाहते थे।[2] और ऐसी एक अन्यायपूर्ण, ब्रिटिश कालीन उत्तराखण्ड में प्रचलित 'कुली बेगार' के उत्पीड़क स्वरूप से मेरा यह शोध पत्र संबंधित है जिसे कि 'दासता', 'अर्द्धदासता', 'बंधुआ मजदूरी', 'मानहानि का प्रश्न', 'कुली कलंक', 'नियमबद्ध गुलामी', 'गुलामी का पट्टा', 'निंदनीय' आदि कितने ही संबोधनों से वयक्त किया गया और ये सभी संबोधन बताते है कि लोगों की दृष्टि में कुली–बेगार कितनी घृणित व अमानवीय थो।[3] इस कुप्रथा में निहित अन्याय ने ही 20वीं सदी में स्थानीय निवासियों को इसकी समाप्ति हेतु संगठित व आंदोलित किया।

II

बेगार का सामान्य अभिप्राय मजदूरी रहित जबरन श्रम से है। उत्तराखण्ड में इसका अभिप्राय मजदूरी रहित या अल्प मजदूरी सहित जबरन कराया गया श्रम और जबरन सामग्री लिए जाने की प्रक्रिया से है।[4] यह सत्य है कि किसी न किसी रूप में बेगार प्रथा प्राक् ब्रिटिश कालीन उत्तराखण्ड की शासन व्यवस्थाओं में प्रचलन में रहा, तथापि 1815 ई0 से उत्तराखण्ड पर काबिज ब्रिटिश सत्ता ने इसे नियमित शोषण का रूप देकर न केवल और क्रूर बनाया, बल्कि काश्तकारी बंदोबस्ती इकरारनामों में मनमानी धाराएँ डालकर इसे लिखित प्रमाणिकता भी दी।[5] ब्रिटिश उत्तराखण्ड में सामान्यतः कुली–बेगार नाम से संबोधित की जाने वाली बेगार प्रथा के तीन संघटक थे– कुली बेगार, कुली उतार व कुली बर्दायश।

कुली बेगारः इसका स्पष्ट अभिप्राय बिना मजदूरी के श्रम से था। औपनिवेशिक राज सत्ता के पहाड़ में विस्तार व सुदृढ़ीकरण के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर किये गये निर्माण कार्यों, बड़े साहबों, सैलानियों, शिकारियों, सैनिकों, सर्वे दलों की यात्राओं के अतिरिक्त प्रशासनिक

अमले के मध्यम व छोटे कर्मचारियों यथा तहसीलदार, पटवारी, रेंजर, गार्ड व चपरासी के लिए भी बेगार ली जाती थी।

कुली उतारः कुली उतार सरकारी या गैर सरकारी बोझों के ढुलान हेतु जबरन मजदूरी (न्यूनतम) सहित बुलाहट का नाम था। यह पहाड़ के काश्तकारों को बंदोबस्ती इकरारनामों की धाराओं के अनुसार साहबों, सैलानियों या सैनिकों के बोझ ढुलान या अन्य सरकारी कामों के लिए देनी पड़ती थी। उतार के दौरान – 'कृषि मौसम, काश्तकारों की व्यस्तता, बर्फ या गरमी का ध्यान कमी नहीं रखा जाता था और यह तथ्य भी भुलादिया जाता था कि कुली वृद्ध या स्त्रो है।[6]

कुली बर्दायशः इसका अभिप्राय विभिन्न पड़ावों में साहबों, सैनिकों और सैलानियों या उनके दलों को दी जाने वाली सामग्री से था। इसके अंतर्गत अनाज, सब्जी, घी, दूध, दही, मुरगी, अंडे, बकरी, पानी, लकड़ी, घास, बत्रन, नमक, मसाला, चीनी, तेल, चटाई आदि लिया जाता था। उतार व बेगार की तरह बदार्यश देने के लिए भी स्थानीय काश्तकार–बंदोबस्ती इकरारनामों के अनुसार बाध्य थे।[7]

पर 'बेगार' सिर्फ औपनिवेशिक राज की आर्थिक–प्रशासनिक नीति व सहूलियत का हिस्सा भी नहीं था, वरन यह मनुष्य की आत्मगरिमा और प्राकृतिक न्याय का सीधा उल्लंघन था, क्योंकि प्रचलित ब्रिटिश भू बंदोबस्त–जिसके अंतर्गत प्रत्येक भू–स्वामी के लिए कुली देना अनिवार्य था, ने उत्तराखण्ड की जनसंख्या के 80–90% हिस्से को जिसके कि पास थोड़ी–बहुंत भी जमीन थी, कुली के रूप में बदल दिया और बेगार देने के लिये अभिशप्त कर दिया। शेष बचा हिस्सा भी अप्रत्यक्ष रूप से बेगार देने के लिए बाध्य था।[8] कुली शब्द का प्रयोग द0अफ्रीका की तरह तिरस्कार पूर्ण था। कुलियों के साथ औपनिवेशिक प्रभुओं का बर्ताव दोयम दर्जे के नागरिक मानने से कही अधिक अमानवीय और आपत्तिजनक होता था। कुलियों को लात मारा जाना या उन पर गोली दाग देने या स्त्री कुलियों के साथ दुर्व्यवहार के उदाहरण ब्रिटिश उत्तराखण्ड के इतिहास में प्रत्यक्ष होते हैं। बर्दायश के तहत स्थानीय लोगों से अपमानजनक व्यवहार व ज्यादती की जाती थी।[9] बर्तानकी शासकों के काश्तकारों को कुली के रूप में बाध्य व प्रयुक्त किये जाने के दृष्टिकोण ने इनके प्रति तिरस्कार और दुर्व्यवहारों को बढ़ावा मिला। 1859 में बर्तानवी हाउस आफ कामंस की सलेक्ट कमेटी ने स्वीकारा कि 'बेगार कण्टकारी, अपमानजनक है व इसने मध्यवर्ती शक्तियों को जनता पर जुल्म ढाने का मौका दिया।[10]

विशेषकर ब्रिटिश प्रशासन के मध्यम व निचले स्तर के कर्मचारियों जैसे–पटवारी, तहसीलदार, चपरासी, लिपिक, फारेस्ट गार्ड आदि द्वारा कुली प्रथा के तहत काश्तकारों के प्रति अपमान जनक व्यवहार, शोषण के सैकड़ों उदाहरण इतिहास में प्रत्यक्ष होते है।[11] औपनिवेशिक राज के क्रियाकलापों, नवविभागों के सृजन व विभागों के विस्तार के परिणाम स्वरूप औपनिवेशिक प्रभुओं के लाव लश्कर सहित पहाड़ में एक स्थान स दूसरे स्थानों के लिये होने वाले दौरों/यात्राओं में हुई अभूतपूर्व वृद्धि ने, कुली–बेगार के लिये लोगों की जरूरत को भी बढावा दिया, जिसके कारण काश्तकारों के लिये, इनका कुली के रूप में बाह्य प्रयोग व दुर्व्यवहार उनके दैनिक जीवन का हिस्सा सा बन गया था।[12] चूँकि इससे कोई भी जाति/वर्ण अछूता न था, इसलिये यह अपमान सामूहिक अपमान था। इस प्रथा के असह्य परिणामों की बानगो इसके विरूद्ध उठी आवाजों में स्पष्ट जो न केवल स्थानोय पत्रों में लेखों के रूप में ढली बल्कि स्थानीय कविताओं/काव्यों में मुखरित हुई।[13]

III

यद्यपि उपनिवेशवाद/सामाज्यिक प्रभुत्व अधीनस्थ लोगों पर पूर्ण नियंत्रण की कामना से भरा होता है और इसलिए अधीनस्थ की दासता उपनिवेशवाद का सामान्य व्यवहार है,[14] किंतु उत्तराखण्ड में बर्तानवी शासन के प्रति नजरिया एक लंबे समय तक आदर से भरा हुआ था। उन्होंने स्थानीय लोगों को गोरखों के अमानवीय, बर्बर, सामंती–सैनिक नियंत्रण से मुक्ति दी थी।[15] विशेष रूप से गोरखाकाल में प्रचलित मनुष्यों की बिक्री के अमानवीय व्यापार को प्रतिबंधित कर। उन्होंने प्रगतिशील, न्यायिक व उदारवादी शासन की छवि प्रस्तुत

की। गोरखाकालीन सैनिक आतंक, सामंती करों व अनेकानेक कुप्रथाओं से ब्रिटिश शासन में मुक्त स्थानीय जनता ने ब्रिटिश पैतृक निरंकुशतावादी शासन के प्रति अपना समर्थन दिया।[16] तथापि जिन तर्कों, न्याय की मूल अवधारणा के आधार पर ब्रिटिश द्वारा मानव विक्रय, दास प्रथा को प्रतिबंधित किया गया था।[3] इनके आधार पर बेगार को प्रतिबंधित करने का ब्रिटिश ने विचार तक नहीं किया। इसके उलट, अर्द्धदासता के गुणों से भरी मध्यकालीन प्रथा बेगार को, आर्थिक व प्रशासनिक सुविधाओं हेतु नियमित करने, संस्थागत रूप देने में उन्हें कोई संकोच नहीं था। यही नहीं इस प्रथा को पुराना और प्रचलित बताकर, कृषकों के हित में बताकर इसका बचाव किया गया।[17] चाय बागानों के यूरोपीय मालिकों को बेगार से मुक्त रख, ब्रिटिश को प्रजातीय भदभाव के सार्वजनिक प्रदर्शन से भी कोई ऐतराज नहीं था।[18]

पाश्चात्य श्रेष्ठ सभ्यता मूल्यों व आदर्शों के प्रतिनिधि के रूप में आत्म संतुष्टि से भरे ब्रिटिश राज–प्रशासन के लिये कुली बेगार के तहत इच्छा के विरूद्ध बोझ ले जाने हेतु विवश करना, संभवतः न्यायपूर्ण व्यवहार व स्वीकार्य विधिक कर्तव्यों के अंतर्गत स्वीकृत था, किंतु यह न्याय के शाश्वत नियम जो कि नैतिक सदाशयता के प्रतिनिधि होते है, जिनमें आधारभूत स्वतंत्रताओं की महत्ता की स्थापना होती है, के स्पष्ट विरूद्ध था।[19] क्योंकि न्याय के नियम मानवीय जीवन की गुणवत्ता व सवर्द्धन हेतु उत्पीड़न से स्वतंत्रता के महत्व को न केवल स्थापित करते है, बल्कि उसे कानून के शासन(Rule of Law) या सभ्य/न्यायी समाज(Orderly Society) को स्थायी पहचान भी बनाते है। इसीलिये स्वयं इलाहाबाद उच्च नयायालय ने ब्रिटिश सरकार प्रशासन के विरूद्ध 15 अप्रैल 1904 को निर्णय दिया कि ग्रामीण काश्तकार उतार या बर्दायश या बनियाँ नाली देने से इंकार कर सकते थे, और यदि ऐसा करने पर तहसीलदार या हाकिम उन्हें बुलाये तो वे इससे भी इंकार कर सकते थे।[20]

IV

यूँ तो बेगार के सामाजिक–आर्थिक निहितार्थ कष्टकारी थे,[21] पर उससे कहीं अधिक पीड़ादायक था उसके मनुष्य की चेतना पर पड़ने वाला मनोवैज्ञानिक प्रभाव। इसने भू–स्वामियों/काश्तकारों को बोझा उठाने वाले 'कुली' के रूप में पहचान देकर, उनके आत्मसम्मान को क्षतिग्रस्त कर दिया। अगर यह प्रथा स्वैच्छिक, आर्थिक–गतिविधि के एक प्रकार के रूप में प्रचलित की जाती तो इस प्रथा से स्थानीय लोगों को कोई आपत्ति नहीं थी। जैसा कि 'खुशकुली'(स्वेच्छा से कुली का काम) या स्थायी कुलियों की नियुक्ति या गढ़वाल में कुली एजेंसी के द्वारा कुलियों की आपूर्ति पक्ष में स्थानीय जनता व नेतृत्व की सहमति व समर्थन से व्यक्त।[22] किंतु बाध्यकारी इस प्रथा के तहत से कुली में बदल दिया जाना वस्तुतः व्यक्ति के स्वयं में विश्वास/आत्मसम्मान को क्षीण कर, अंततः शासक के अधीन विजित की अधीनस्थ दास स्थिति को सदैव के लिये नियत कर देता है।[23] विशेषतः इसने उच्च जाति के स्वर्णों के आत्मगौरव व सामाजिक प्रतिष्ठा का क्रूरतापूर्ण पद दलन किया। सामाजिक सांस्कृतिक–आर्थिक हैसियत में विशिष्ट अधिकार व सम्मान प्राप्त इस वर्ग के लिये 'कुली' के रूप में स्वयं को सोचना व काम करना, आत्म सम्मान के खत्म होने जैसा था। इसलिये बेगार के विरूद्ध सर्वाधिक उग्र प्रतिक्रिया व मुखर विरोध भी इसी वर्ग से आया। बदरीदत्त जोशी कुली बेगार को हमारे प्रांत के उच्च श्रेणी के लोगों के आत्मसम्मान की जड़ पर कुठाराघात के रूप में देख रहे थे,[24] तो हरगोविंद पंत के लिये यह प्रथा घृणित व अपमानजनक थी। मानमार्यादा पर एक कलंक थी।[25]

V

वस्तुतः 'स्वचेतना' को क्षतिग्रस्त करने वालें बेगार के दुष्प्रभावों की समझ उत्तराखण्ड में शिक्षा व राष्ट्रवादी चेतना की व्यापकता के साथ गहन होती चली गयी। शिक्षा के प्रसार, सांस्कृतिक बौद्धिक संगठनों के विस्तार, पत्र–पत्रिकाओं के विस्तार, पत्र–पत्रिकाओं के विस्तार, राजनीतिक चेतना के प्रसार, विशेष रूप से शिक्षित मध्यवर्ग के विकास ने बेगार के पीड़ादायक अन्यायी पहलुओं के प्रति 20वीं शती के प्रथम दशक से गंभीर चिंता व्यक्त करना आरम्भ कर दिया। 20वीं शती के दूसरे दशक विशेषतः 1913 के बाद जब बेगार प्रथा के

'अल्मोड़ा' में लागू किये जान की घोषणा की गयी, बेगार के प्रति विरोध के स्वर तीखे व संगठित होते चल गये। सी0वाई0 चिंतामणि के शब्दों में 'अगर ब्रिटिश सरकार जानवरों के विरूद्ध क्रूरता के लिये इतनी संवेदनशील है कि इसे रोकने के लिये कानून पास करती है, किंतु बेगार के तहत आदमियों के साथ क्रूरता को रोकने के लिये कानून की जरूरत क्यों नहीं महसूस करती।[26] बेगार जैसी न्याय से असंगत प्रथा का औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा जारी रखना स्वयं ब्रिटिश के मुक्तिदायी स्वरूप पर प्रश्न चिह्न लगा रहा था। वहीं दूसरी ओर स्वराज की बढ़ती चेतना ने बेगार विरोधी निर्णायक मानसिकता को रचने में योगदान दिया। स्वराज मानव जीवन की गुणवत्ता व संवर्द्धन से जुड़ा था, केवल राजनैतिक शासन व्यवस्था का ही रूप नहीं वरन यह एक मनोवृत्ति, भावना, मानसिकता थी और इसीलिये न्याय की मूल भावना से भी जुड़ा था। गॉधी जी के शब्दों में–यह मनुष्य के आत्म का उस प्रतिरोधी चेतना से समर्थ होना था जो शक्ति के दुरूपयोग का प्रतिकार करती थी।

अतः बेगार जो कि मनुष्य के स्वतंत्र आत्म का क्षरण करता है, आत्म सम्मान को नष्ट करता है, जो स्वयं दासता का ही एक रूप है अपने स्वरूप में ही स्वराज की मूलभावना के विरूद्ध था और इसीलिये बेगार के विरूद्ध राष्ट्रवादी मत असंदिग्ध व निर्णायक थे– 'कुली देना नहीं होता।'

संदर्भ–सूची

1 चार्ल्स डिकेन्स : 'ग्रेट एक्सपेक्टेशन्स (1860–610), (लंदन), पेन्गुइन प्रकाशन, 2003, अध्याय : 8, पृ0–63

2 सेन, अमर्त्य : 'न्याय का स्वरूप', राजपाल प्रकाशन, 2010, पृ0–07

3 यंग इंडिया : 18, 25 जुलाई 1929; दुर्गादत्त पाण्डे, शक्ति : 30 नवम्बर 1920; सुधा जोशी : कुर्मांचल केशरी : पृ0 27; शक्ति : 17 फरवरी 1920; अल्मोड़ा अखबार : 28 जुलाई 1913, 20 नवम्बर 1913, 14 जुलाई 1913; शक्ति : 24 दिसम्बर 1918, 11 जनवरी 1921, 27 जुलाई 1929

4 पाठक, शेखर : उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1987, पृ0–49

5 तिवारी, डी0डी0 : हिस्टोरिकल ऐंड पॉलीटिकल नोट्स ऑन कुमाऊँ, लखनऊ, 1923, पृ0–67–68

6 पाठक, शेखर : पूर्वोक्त, पृ0 : 51

7 शक्ति : जनवरी–अप्रैल, 1919

8 जनरल एडमिनिस्ट्रैटिव डिपार्टमेंट : 398/1913 : बेगार सिस्टम इन कुमाऊँ; 108/1918 : बेगार सिस्टम इन कुमाऊँ, उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।

9 मार्डन रिव्यू : फरवरी 1909:146; लीडर : 3 जून, 1911; जनरल एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट फाइल 587–सी 1900; शक्ति : 1 फरवरी 1921।

10 धर्मपाल : इरोजन ऑफ नार्म्स ऐंड डिगनिटी ऐंट आफ कैलसनैस, पौपराइजेशन ऐंड बौन्डेज इन माडर्न इंडिया, दिल्ली, पृ0 22–23, 52

11	लीडर : 3 जून 1971; शक्ति :27 अप्रैल 1920	वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट : 1902, पृ0 382
12	गढ़वाली :	नवम्बर 1913, पृ0 273–74
13	गढ़वाली :	मई 1905, तिवाड़ी, गिरीश व पाठक, शेखर : हमारी कविता के आंखर, अल्मोड़ा, 1978
14	न्गुगी वा थ्योंरो :	'भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता, (अनुवाद : आनंद स्वरूप वर्मा)ा, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 90–117
15	मेरी अम्मा (दादी) स्व0 श्रीमती रेवती भट्ट जिसने 1942 में अपने गाँव 'सालम' को छोड़कर मेरे दादा स्व0 श्री भवानी दत्त भट्ट के साथ जंगलों में पनाह ली क्योंकि गाँव में अफवाह फैली थी कि 'गोरखे' आ गये हैं। मेरी अम्मा कहती थी कि लोगों को अंग्रेजों का नहीं, वरन 'गोरखों' से भय होता था।	
16	विशेष रूप से कुमाऊँ कमिश्नर रैमजे के शासनकाल तक ब्रिटिश शासन के प्रति अरूचि या विरोध की व्यापक अभिव्यक्ति दृष्टिगत नहीं होती।	
17	वर्नाक्यूलर प्रेस रिपोर्ट :	1897 : पृ0 558–59
18	अल्मोड़ा अखबार :	23 मई 1896
19	सेन, अमर्त्य :	न्याय का स्वरूप, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
20	इलाहाबाद लॉ जर्नरलः	वा0 एक, 1904, पृ0 265
21	अल्मोड़ा अखबार :	15 जुलाई 1874, 22 सितम्बर 1884, 11 अक्टूबर 1886, 14 दिसम्बर 1891, 10 अप्रैल 1897, 13 दिसम्बर 1901 हिन्दुस्तानी : 19 जून 1895; गढ़वाली : अप्रैल 1901, 1907 आदि।
22	पाठक, शेखर :	उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, दिल्ली, 1987, पृ0 144–148
23	नंदी, आशीष :	दि इंटिमेट एनेमी', दिल्ली, 2009 व न्गुगी व थ्योंगोः पूर्वोक्त
24	शक्ति :	24 फरवरी से 30 मार्च 1920 के अंक
25	शक्ति :	6 जनवरी, 20 जनवरी व 20 अप्रैल, 1920 का अंक
26	शाह, शम्भू प्रसाद :	गोविंद बल्लभ पंत : एक जीवनी